Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2018 SISRRJ | Volume 1 | Issue 2 | ISSN : 2581- 6306

श्रीमद्भगवद्गीता और सांख्ययोगतत्त्व

डॉ० संजीव कुमार
प्रवक्ता (हिन्दी)
शिक्षा निदेशालय, दिल्ली सरकार, भारत।

सारांश – श्रीमद्भगवद्गीता सांख्य दर्शन का प्रतिनिधि ग्रन्थ माना जाता है। गीता में सांख्य के अनेक सूत्र मिलते हैं। सांख्य में 25 तत्त्व, 13 करण, व्यक्त, अव्यक्त, ज्ञ, सत्कार्यवाद की चर्चा की गई है। श्रीकृष्ण गीता में अर्जुन को प्रकारान्तर से सांख्य का उपदेश देते हुए आत्मबोध कराते हैं।

प्रमुख शब्द – गीता, सांख्य, कपिलमुनि, आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक, दु:ख-निवृत्ति, पञ्चमहाभूत, पञ्चकर्मेन्द्रिय, पञ्चतन्मात्रा, पञ्चमहाभूत इत्यादि।

प्राचीन ऋषियों के लिए जीवन महत्त्वपूर्ण था और वे अपने जीवन को व्यर्थ नष्ट कर देना उचित नहीं मानते थे। उनकी दृष्टि सत्य खोज में लगी रहती थी। सत्य क्या है? इसको जानने के लिए ऋषि-मुनि निरन्तर उद्योगशील रहते थे। भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में ऋषियों-मुनियों ने प्राप्त किया वही दर्शन कहलाया। दर्शन मनुष्य के जीवन रूपी प्रयोगशाला में अनुसन्धान किया हुआ सत्य है। यह अनुसन्धान उपनिषदों के आविर्भावकाल तक आते- आते आत्मदर्शन हो गया। यहाँ ध्यातव्य है कि सर्वप्रथम पुरुषार्थ अमृतत्त्व (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) की प्राप्ति ही मानव-जीवन का एकमात्र लक्ष्य था, किन्तु अवान्तरकाल में रुचि, शक्ति, अभ्यास आदि के भेद से तत्त्व के विषय में ज्यों-ज्यों विचार होते गये त्यों-त्यों दर्शन के भी भेद प्रभेद होते गये। परिणामत: यह वह समय आ गया जब भेद के अन्तर्गत अवान्तर भेद होने से अधिकाधिक दार्शनिक सम्प्रदाय देश में उत्पन्न हो गये। जिसे चार्वाक, लोकायत, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, जैन, बौद्ध इत्यादि नामों से जाना गया।

भारतीय दर्शन में सांख्यदर्शन के प्रवर्तक कपिलमुनि माने जाते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में कपिलमुनि को भगवान् का अवतार कहा गया है। सांख्य शब्द का अर्थ है- सम्यक् ख्यानम् अर्थात सम्यक् विचार। इसी को विवेक-बुद्धि कहा गया है। सांख्य-दार्शनिकों का मन्तव्य है कि आत्मा अविद्या के आवरण से आच्छन्न रहती है, इसीलिए आत्मा के विशुद्ध चैतन्यमय नित्य स्वरूप का ज्ञान नहीं हो पाता। इसी अज्ञान के कारण दु:खमय जगत् की सत्ता है। आत्मा त्रिगुणातीत है और अविद्या त्रिगुणात्मिका। आत्मा को अविद्या से पृथक् करना आवश्यक है क्योंकि इस पृथक्करण के बिना जगत् के भौतिक दु:खों की आत्यन्तिक निवृत्ति सम्भव नहीं है। पृथक्करण के इस

सिद्धान्त को 'विवेक ख्याति' कहते हैं। यह विवेक-बुद्धि सांख्यदर्शन से प्राप्त होती है। 'न हि सांख्यसमं ज्ञानम्' इस उक्ति द्वारा दार्शनिकों ने प्रशंसा भी किया है कि यथार्थ ज्ञान तो सांख्य में ही है, ऐसा ज्ञान दूसरे शास्त्र में नहीं है। मुमुक्षु को दु:ख निवृत्ति हेतु सांख्यदर्शन की आवश्यकता होती है।

सांख्य में आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक दु:ख की निवृत्ति को चरम लक्ष्य माना गया है। ध्यातव्य है कि सभी प्रकार के दु:खों से मुक्ति ज्ञान या विवेक के द्वारा ही सम्भव है। ज्ञान-प्राप्ति के लिए सांख्यदर्शन में तत्त्वज्ञान का वर्णन किया गया है। यहाँ 25 तत्त्वों में पुरुष, प्रकृति, महत्, अहङ्कार, मन, पञ्चकर्मेन्द्रिय (श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और घ्राण) पञ्चतन्मात्रा (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध) पञ्चमहाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश) हैं। सांख्यदर्शन में कार्य-कारण के सम्बन्ध पर भी विचार किया गया है-

असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसंभवाभावात्।

शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्चसत्कार्यम्॥

अर्थात् जो असत् (अविद्यमान) है वह सत् नहीं हो सकता। उपादान के ग्रहण से ही कार्य की सिद्धि होती है। सब कारणों से सब कार्यों की उत्पत्ति असम्भव है। शक्ति सम्पन्न (शक्त) कारण से शक्ति सम्पन्न (शक्त) वस्तु की उत्पत्ति अनुभव-सिद्ध विषय है। कार्य कारण से कदापि भिन्न नहीं है; अर्थात् कार्य और कारण वास्तव में एक ही वस्तु की भिन्न-भिन्न दशाओं के नाम हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता में सांख्यदर्शन के विचार सूत्र मिलते हैं। गीता में वेद, वेदाङ्ग, पुराण, धर्मशास्त्र का सार है। जब मोहग्रस्त अर्जुन युद्ध से विमुख होने लगा तो लीलाधारी भगवान् श्रीकृष्ण ने उसे अपने हृदय की दुर्बलता त्यागकर युद्ध करने को कहा।

श्रीकृष्ण ने गीता के माध्यम से भारत को कर्म, उपासना, भक्ति और ज्ञान रूपी सागर में स्नान कराया। गीता के उपदेश से अर्जुन के अहङ्कार का पूर्णत: नाश हो गया। वह शिष्यत्व रूप में भगवान् श्रीकृष्ण के शरणागत को प्राप्त हुआ। भगवान् श्रीकृष्ण गीता ले माध्यम से अर्जुन के घोर अज्ञानान्धकार को हटाने के लिए ज्ञान, कर्म और उपासना के आधार पर सांख्ययोग के तत्त्व प्रकट किया। सांख्ययोग को ज्ञानयोग के नाम से भी जाना जाता है। सांख्य तत्त्व को भगवान् श्रीकृष्ण गीता के माध्यम से समझाते हैं कि हे अर्जुन! तू न शोक करने योग्य मनुष्यों के लिए शोक करता है- **अशोच्यानन्वशोचस्त्वम्**। इस संसार में दो चीजें हैं- सत् और असत्। शरीरी सत् है और शरीर असत् है अर्थात् शरीरी अविनाशी है तो शरीर विनाशी है। अविनाशी तत्त्व का कभी विनाश नहीं होता, इसलिए वह शोक का विषय नहीं बनता। विनाशी तत्त्व का हर क्षण विनाश होता है, वह एक क्षण भी स्थायी रूप से नहीं रहता। इसलिए वह भी शोक का विषय नहीं बनता। नाशवान् शरीर है न कि शरीरी। तुम सर्वदेशीय हो और यह शरीर एक देशीय है। तुम चिन्मय लोक के निवासी हो, शरीर जड़ संसार का निवासी है अर्थात् तुम निरन्तर अमरता में रहते हो और शरीर निरन्तर मृत्यु में रहता है। ऐसे शरीर को लेकर शोक, चिंता, भय आदि नहीं करना चाहिए। कुमार, युवा और वृद्धावस्था तो मात्र शरीरधारियों का धर्म है; शरीरी की नहीं। गीता में कहा गया है -

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।।

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।

विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति।। (2)

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा कि हे अर्जुन! सम्पूर्ण कर्मों के सिद्धि के पाँच हेतु अधिष्ठान, कर्ता, करण, चेष्टा और देव है–

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे।

सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम्।। (3)

शरीर और जिस देश में यह शरीर स्थित है, ये दोनों अधिष्ठान है। सम्पूर्ण क्रियाएँ प्रकृति के द्वारा ही होती हैं किन्तु अविवेकी पुरुष प्रकृति से होने वाली क्रियाओं को अपना मान लेता है और स्वयं को कर्ता मानने लगता है। इसका तात्पर्य है कि प्रकृति और पुरुष– इन दोनों में केवल प्रकृति में ही क्रियाएँ होती हैं, पुरुष में नहीं। प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करने से ही पुरुष उन क्रियाओं को कर्ता मान लेता है। पंचकर्मेन्द्रिय, पंचज्ञानेन्द्रिय (बहि:करण) मन, बुद्धि और अहङ्कार (अन्त: करण) ये 13 करण है। इन करणों की अलग–अलग चेष्टाएँ इसप्रकार होती हैं–

1 वाक्– बोलना

2 पाणि– आदान–प्रदान करना,

3 पाद– चलना–फिरना,

4 पायु– मल का त्याग करना,

5 उपस्थ– मूत्र का त्याग करना, सम्भोग क्रिया

6 श्रोत्र– सुनना,

7 त्वक्– स्पर्श करना,

8 चक्षु– देखना,

9 जिह्वा– रसास्वादन करना,

10 घ्राण– सूंघना,

11 मन– मनन करना,

12 बुद्धि– निश्चय करना

13 अहङ्कार– मैं ऐसा हूँ ऐसा अवबोधित होना

सम्पूर्ण कार्यों की सिद्धि में 5 वाँ हेतु का नाम 'दैव' (संस्कार) है। मनुष्य जैसा कर्म करता है वैसा ही संस्कार उसके अन्त:करण पर पड़ता है। शुभकर्म का शुभ संस्कार होता है ओर अशुभकर्म का अशुभ संस्कार होता है। वे संस्कार आगे कर्म करने की प्रेरणाणा देते हैं। यहाँ पाँच हेतु का कारण यह है कि आधार के बिना कोई भी कार्य कहाँ किया जायेगा? कर्ता के बिना क्रिया कौन करेगा? क्रिया के साधन (करण) होने से ही कर्ता अपने संस्कारों के अनुसार क्रिया करेगा। गीता का यह वर्णन सांख्ययोग का तत्त्व है।

सांख्ययोगतत्त्व से युक्त विवेक-विचार की प्रधानता को गीता में स्वीकार किया गया है। इहलौकिक जगत् में जितने भी कर्म होते हैं वे सभी पाँच हेतुओं से ही होते हैं। सभी प्राणियों का शरीर तीन गुण (सत्त्व, रज और तम) पञ्चमहाभूत, पञ्चकर्मेन्द्रिय, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्च विषय और मन सहित चौबीस तत्त्वों से बना होता है, जिसमें चेतन रूप में बैठा हुआ जीवात्मा 25 वाँ तत्त्व है। जीवात्मा ही द्रष्टा, साक्षी, पुरुष आदि नामों से जाना जाता है। शरीर के नाश के साथ जीवात्मा का नाश नहीं होता है। चौबीस तत्त्वों के समूह में ही जन्म, वृद्धि, जरा और मरण के लक्षण रहते हैं किन्तु इनके सम्बन्ध से जीवात्मा भी इन्हीं चार लक्षणों तथा चार पुरुषार्थों से सम्बन्धित कहा जाता है। विषयों में आसक्त हुआ जीवात्मा जब आसक्तिरहित होकर विषयों से निवृत हो जाता है तो वह मुक्त कहलाता है। चौबीस तत्वों में तीन गुण को मूल प्रकृति अव्यक्त, माया, प्रधान आदि नामों से जानते हैं शेष इक्कीस तत्त्वों को इसी मूल प्रकृति का विकार कार्य मानते हैं। 25वाँ तत्त्व जीवात्मा मात्र देखने वाला ही है। वह कार्य या विकास से बिलकुल ही अलग है किन्तु इस रहस्य को नहीं जानने वाला अज्ञानी सुख-दु:ख प्रदान करने वाला कर्तृत्वाभिमान में लगा रहता है। ज्ञानी इस बन्धन से मुक्त रहता है। वह शरीर से होने वाले सम्पूर्ण कर्मों को प्रकृति द्वारा किया हुआ देखता है यही जीवन्मुक्ति है। श्रीमद्भगवद्गीता कायिक, वाचिक और मानसिक शुद्धि के लिए भी कहती है-

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।

ब्रह्मचर्यमहिंसा च शरीरं तप उच्यते॥

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रयहितं च यत्।

स्वाध्यायमभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्चयते॥

मन: प्रसाद: सौम्यत्वं मौनमामविनिग्रह:।

कि भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते॥ (4)

अर्थात् शरीर, वाणी और मन से केवल शास्त्रविहित जो कर्म ही किये जाय वह तप है। यह तप ही सांख्ययोग का विवेक-विचार है। विवेक विचार से मोह मिट जाता है। भगवान् कृष्ण कहते हैं कि निष्कामभाव से किया हुआ तप सात्त्विक होता है। यह सात्त्विक तप बाँधने वाला नहीं होता है अपितु मुक्ति प्रदान करने वाला होता है। राजस् एवं तामस् तप बन्धन के कारण होते हैं। यही नहीं, यहाँ विवेक-विचार की प्रधानता है-

तत्रैव सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः।

पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः॥

पश्य नाहङ्कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।

हत्वापि स इमॉल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते॥ (5)

अर्थात् जिस पुरुष के अन्तःकरण में 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा भाव नहीं है तथा जिसकी बुद्धि सांसारिक पदार्थों में और कर्मों में लिप्त नहीं होती है।

वह पुरुष इन सब लोगों को मारकर भी वास्तव में न तो मरता है और न ही पाप से बँधता है।

सन्दर्भ सूची -

1. ईश्वरकृष्णकृत सांख्यकारिका, 9
2. श्रीमद्भगवद्गीता 2/16-17
3. श्रीमद्भगवद्गीता 18/13-14
4. श्रीमद्भगवद्गीता - 18/14-16
5. श्रीमद्भगवद्गीता - 18/16-17